सुबेल पर श्री रामजी की झाँकी और चंद्रोदय वर्णन

चौपाई :

*** इहाँ सुबेल सैल रघुबीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा॥ सिखर एक उतंग अति देखी। परम रम्य सम सुभ्र बिसेषी॥1॥

भावार्थ:-

यहाँ श्री रघुवीर सुबेल पर्वत पर सेना की बड़ी भीड़ (बड़े समूह) के साथ उतरे। पर्वत का एक बहुत ऊँचा, परम रमणीय, समतल और विशेष रूप से उज्ज्वल शिखर देखकर-॥1॥

*** तहँ तरु किसलय सुमन सुहाए। लछिमन रचि निज हाथ डसाए॥ ता पर रुचिर मृदुल मृगछाला। तेहिं आसन आसीन कृपाला॥2॥

भावार्थ:-

वहाँ लक्ष्मणजी ने वृक्षों के कोमल पत्ते और सुंदर फूल अपने हाथों से सजाकर बिछा दिए। उस पर सुंदर और कोमल मृग छाला बिछा दी। उसी आसन पर कृपालु श्री रामजी विराजमान थे॥2॥

*** प्रभु कृत सीस कपीस उछंगा। बाम दहिन दिसि चाप निषंगा दुहुँ कर कमल सुधारत बाना। कह लंकेस मंत्र लगि काना॥3॥

भावार्थ:-

प्रभु श्री रामजी वानरराज सुग्रीव की गोद में अपना सिर रखे हैं। उनकी बायीं ओर धनुष तथा दाहिनी ओर तरकस (रखा) है। वे अपने दोनों करकमलों से बाण सुधार रहे हैं। विभीषणजी कानों से लगकर सलाह कर रहे हैं॥3॥

*** बड़भागी अंगद हनुमाना। चरन कमल चापत बिधि नाना॥ प्रभु पाछें लछिमन बीरासन। कटि निषंग कर बान सरासन॥4॥

भावार्थ:-

परम भाग्यशाली अंगद और हनुमान अनेकों प्रकार से प्रभु के चरण कमलों को दबा रहे हैं। लक्ष्मणजी कमर में तरकस कसे और हाथों में धनुष-बाण लिए वीरासन से प्रभु के पीछे सुशोभित हैं॥4॥

दोहा :

*** ऐहि बिधि कृपा रूप गुन धाम रामु आसीन। धन्य ते नर एहिं ध्यान जे रहत सदा लयलीन॥11 क॥

भावार्थ:-

इस प्रकार कृपा, रूप (सौंदर्य) और गुणों के धाम श्री रामजी विराजमान हैं। वे मनुष्य धन्य हैं, जो सदा इस ध्यान में लौ लगाए रहते हैं॥11 (क)॥

*** पूरब दिसा बिलोकि प्रभु देखा उदित मयंक। कहत सबहि देखहु ससिहि मृगपति सरिस असंक॥11 ख॥

भावार्थ:-

पूर्व दिशा की ओर देखकर प्रभु श्री रामजी ने चंद्रमा को उदय हुआ देखा। तब वे सबसेकहने लगे- चंद्रमा को तो देखो। कैसा सिंह के समान निडर है!॥11 (ख)॥

चौपाई :

*** पूरब दिसि गिरिगुहा निवासी। परम प्रताप तेज बल रासी॥ मत्त नाग तम कुंभ बिदारी।ससि केसरी गगन बन चारी॥1॥

भावार्थ:-

पूर्व दिशा रूपी पर्वत की गुफा में रहने वाला, अत्यंत प्रताप, तेज और बल की राशि यह चंद्रमा रूपी सिंह अंधकार रूपी मतवाले हाथी के मस्तक को विदीर्ण करके आकाश रूपी वन में निर्भय विचर रहा है॥1॥ बिथुरे नभ मुकुताहल तारा। निसि सुंदरी केर सिंगारा॥ कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई। कहहु काह निज निज मति भाई॥2॥

भावार्थ:-

आकाश में बिखरे हुए तारे मोतियों के समान हैं, जो रात्रि रूपी सुंदर स्त्री के श्रृंगार हैं। प्रभु ने कहा- भाइयो! चंद्रमा में जो कालापन है, वह क्या है? अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार कहो॥2॥

*** कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाँई॥ मारेउ राहु ससिहि कह कोई। उर महँ परी स्यामता सोई॥3॥

भावार्थ:-

सुग्रीव ने कहा- हे रघुनाथजी! सुनिए! चंद्रमा में पृथ्वी की छाया दिखाई दे रही है। किसी ने कहा- चंद्रमा को राहु ने मारा था। वही (चोट का) काला दाग हृदय पर पड़ा हुआ है॥3॥

*** कोउ कह जब बिधि रति मुख कीन्हा। सार भाग ससि कर हरि लीन्हा॥ छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं। तेहि मग देखिअ नभ परिछाहीं॥4॥

भावार्थ:-

कोई कहता है- जब ब्रह्मा ने (कामदेव की स्त्री) रति का मुख बनाया, तब उसने चंद्रमा का सार भाग निकाल लिया (जिससे रति का मुख तो परम सुंदर बन गया, परन्तु चंद्रमा के हृदय में छेद हो गया)। वही छेद चंद्रमा के हृदय में वर्तमान है, जिसकी राह से आकाश की काली छाया उसमें दिखाई पड़ती है॥4॥

*** प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा॥ बिष संजुत कर निकर पसारी। जारत बिरहवंत नर नारी॥5॥

भावार्थ:-

प्रभु श्री रामजी ने कहा- विष चंद्रमा का बहुत प्यारा भाई है, इसी से उसने विष को अपने हृदय में स्थान दे रखा है। विषयुक्त अपने किरण समूह को फैलाकर वह वियोगी नर-नारियों को जलाता रहता है॥5॥

दोहा :

*** कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास। तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास॥12 क॥

भावार्थ:-

हनुमान्‌जी ने कहा- हे प्रभो! सुनिए, चंद्रमा आपका प्रिय दास है। आपकी सुंदर श्याम मूर्ति चंद्रमा के हृदय में बसती है, वही श्यामता की झलक चंद्रमा में है॥12 (क)॥ *नवाह्नपारायण, सातवाँ विश्राम*

श्री रामजी के बाण से रावण के मुकुट-छत्रादि का गिरना

*** पवन तनय के बचन सुनि बिहँसे रामु सुजान। दच्छिन दिसि अवलोकि प्रभु बोले कृपा निधान॥12 ख॥

भावार्थ:-

पवनपुत्र हनुमान्‌जी के वचन सुनकर सुजान श्री रामजी हँसे। फिर दक्षिण की ओर देखकर कृपानिधान प्रभु बोले-॥12 (ख)॥

चौपाई :

*** देखु विभीषन दच्छिन आसा। घन घमंड दामिनी बिलासा॥ मधुर मधुर गरजइ घन घोरा। होइ बृष्टि जनि उपल कठोरा॥1॥

भावार्थ:-

हे विभीषण! दक्षिण दिशा की ओर देखो, बादल कैसा घुमड़ रहा है और बिजली चमक रही है। भयानक बादल मीठे-मीठे (हल्के-हल्के) स्वर से गरज रहा है। कहीं कठोर ओलों की वर्षा न हो!॥1॥

*** कहत विभीषन सुनहू कृपाला। होइ न तड़ित न बारिद माला॥ लंका सिखर उपर आगारा। तहँ दसकंधर देख अखारा॥2॥

भावार्थ:-

विभीषण बोले- हे कृपालु! सुनिए, यह न तो बिजली है, न बादलों की घटा। लंका की चोटी पर एक महल है। दशग्रीव रावण वहाँ (नाच-गान का) अखाड़ा देख रहा है॥2॥

*** छत्र मेघडंबर सिर धारी। सोइ जनु जलद घटा अति कारी॥ मंदोदरी श्रवन ताटंका। सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका॥3॥

भावार्थ:-

रावण ने सिर पर मेघडंबर (बादलों के डंबर जैसा विशाल और काला) छत्र धारण कर रखा है। वही मानो बादलों की काली घटा है। मंदोदरी के कानों में जो कर्णफूल हिल रहे हैं, हे प्रभो! वही मानो बिजली चमक रही है॥3॥

*** बाजहिं ताल मृदंग अनूपा। सोइ रव मधुर सुनहू सुरभूपा। प्रभु मुसुकान समुझि अभिमाना। चाप चढ़ाव बान संधाना॥4॥

भावार्थ:-

हे देवताओं के सम्राट! सुनिए, अनुपम ताल मृदंग बज रहे हैं। वही मधुर (गर्जन) ध्वनि है। रावण का अभिमान समझकर प्रभु मुस्कुराए। उन्होंने धनुष चढ़ाकर उस पर बाण का सन्धान किया॥4॥

दोहा :

*** छत्र मुकुट तांटक तब हते एकहीं बान। सब कें देखत महि परे मरमु न कोऊ जान॥13 क॥

भावार्थ:-

और एक ही बाण से (रावण के) छत्र-मुकुट और (मंदोदरी के) कर्णफूल काट गिराए। सबके देखते-देखते वे जमीन पर आ पड़े, पर इसका भेद (कारण) किसी ने नहीं जाना॥13 (क)॥

*** अस कौतुक करि राम सर प्रबिसेउ आई निषंग। रावन सभा ससंक सब देखि महा रसभंग॥13 ख॥

भावार्थ:-

ऐसा चमत्कार करके श्री रामजी का बाण (वापस) आकर (फिर) तरकस में जा घुसा। यह महान् रस भंग (रंग में भंग) देखकर रावण की सारी सभा भयभीत हो गई॥13 (ख)॥

चौपाई : कंप न भूमि न मरुत बिसेषा। अस्त्र सस्त्र कछु नयन न देखा। सोचहिं सब निज हृदय मझारी। असगुन भयउ भयंकर भारी॥1॥

भावार्थ:-

न भूकम्प हुआ, न बहुत जोर की हवा (आँधी) चली। न कोई अस्त्र-शस्त्र ही नेत्रों से देखे। (फिर ये छत्र, मुकुट और कर्णफूल जैसे कटकर गिर पड़े?) सभी अपने-अपने हृदय में सोच रहे हैं कि यह बड़ा भयंकर अपशकुन हुआ!॥1॥

*** दसमुख देखि सभा भय पाई। बिहसि बचन कह जुगुति बनाई। सिरउ गिरे संतत सुभ जाही। मुकुट परे कस असगुन ताही॥2॥

भावार्थ:-

सभा को भयतीत देखकर रावण ने हँसकर युक्ति रचकर ये वचन कहे- सिरों का गिरना भी जिसके लिए निरंतर शुभ होता रहा है, उसके लिए मुकुट का गिरना अपशकुन कैसा?॥2॥

मन्दोदरी का फिर रावण को समझाना और श्री राम की महिमा कहना

*** सयन करहु निज निज गृह जाईं। गवने भवन सकल सिर नाई॥ मंदोदरी सोच उर बसेऊ। जब ते श्रवनपूर महि खसेऊ॥3॥

भावार्थ:-

अपने-अपने घर जाकर सो रहो (डरने की कोई बात नहीं है) तब सब लोग सिर नवाकर घर गए।

जब से कर्णफूल पृथ्वी पर गिरा, तब से मंदोदरी के हृदय में सोच बस गया॥3॥
*** सजल नयन कह जुग कर जोरी। सुनहु प्रानपति बिनती मोरी॥ कंत राम बिरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि हठ लग धरहू॥4॥
भावार्थ:-
नेत्रों में जल भरकर, दोनों हाथ जोड़कर वह (रावण से) कहने लगी- हे प्राणनाथ! मेरी विनती सुनिए। हे प्रियतम! श्री राम से विरोध छोड़ दीजिए। उन्हें मनुष्य जानकर मन में हठ न पकड़े रहिए॥4॥
दोहा :
*** बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु। लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रतिजासु॥14॥
भावार्थ:-
मेरे इन वचनों पर विश्वास कीजिए कि ये रघुकुल के शिरोमणि श्री रामचंद्रजी विश्व रूप हैं- (यह सारा विश्व उन्हीं का रूप है)। वेद जिनके अंग-अंग में लोकों की कल्पना करते हैं॥14॥
चौपाई :
*** पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग अँग बिश्रामा॥ भृकुटि बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला॥1॥
भावार्थ:-
पाताल (जिन विश्व रूप भगवान् का) चरण है, ब्रह्म लोक सिर है, अन्य (बीच के सब) लोकों का विश्राम (स्थिति) जिनके अन्य भिन्न-भिन्न अंगों पर है। भयंकर काल जिनका भृकुटि संचालन (भौंहों का चलना) है। सूर्य नेत्र हैं, बादलों का समूह बाल है॥1॥
*** जासु घ्रान अस्विनीकुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा॥ श्रवन दिसा दस बेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी॥2॥
भावार्थ:-
अश्विनी कुमार जिनकी नासिका हैं, रात और दिन जिनके अपार निमेष (पलक मारना और खोलना) हैं। दसों दिशाएँ कान हैं, वेद ऐसा कहते हैं। वायु श्वास है और वेद जिनकी अपनी वाणी है॥2॥
*** अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला॥ आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा॥3॥
भावार्थ:-
लोभ जिनका अधर (होठ) है, यमराज भयानक दाँत हैं। माया हँसी है, दिक्पाल भुजाएँ हैं। अग्नि मुख है, वरुण जीभ है। उत्पत्ति, पालन और प्रलय जिनकी चेष्टा (क्रिया) है॥3॥
*** रोम राजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा॥ उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु का बहु कलपना॥4॥

भावार्थ:-

अठारह प्रकार की असंख्य वनस्पतियाँ जिनकी रोमावली हैं, पर्वत अस्थियाँ हैं, नदियाँ नसों का जाल है, समुद्र पेट है और नरक जिनकी नीचे की इंद्रियाँ हैं। इस प्रकार प्रभु विश्वमय हैं, अधिक कल्पना (ऊहापोह) क्या की जाए?॥4॥

दोहा : अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान। मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान॥15 क॥

भावार्थ:-

शिव जिनका अहंकार हैं, ब्रह्मा बुद्धि हैं, चंद्रमा मन हैं और महान (विष्णु) ही चित्त हैं। उन्हीं चराचर रूप भगवान श्री रामजी ने मनुष्य रूप में निवास किया है॥15 (क)॥

*** अस बिचारि सुनु प्रानपति प्रभु सन बयरु बिहाइ। प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ॥15 ख॥

भावार्थ:-

हे प्राणपति सुनिए, ऐसा विचार कर प्रभु से वैर छोड़कर श्री रघुवीर के चरणों में प्रेम कीजिए, जिससे मेरा सुहाग न जाए॥15 (ख)॥

चौपाई :

*** बिहँसा नारि बचन सुनि काना। अहो मोह महिमा बलवाना॥ नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥1॥

भावार्थ:-

पत्नी के वचन कानों से सुनकर रावण खूब हँसा (और बोला-) अहो! मोह (अज्ञान) की महिमा बड़ी बलवान् है। स्त्री का स्वभाव सब सत्य ही कहते हैं कि उसके हृदय में आठ अवगुण सदा रहते हैं-॥1॥

*** साहस अनृत चपलता माया। भय अबिबेक असौच अदाया॥ रिपु कर रूप सकल तैं गावा। अति बिसाल भय मोहि सुनावा॥2॥

भावार्थ:-

साहस, झूठ, चंचलता, माया (छल), भय (डरपोकपन) अविवेक (मूर्खता), अपवित्रता और निर्दयता। तूने शत्रु का समग्र (विराट) रूप गाया और मुझे उसका बड़ा भारी भय सुनाया॥2॥

*** सो सब प्रिया सहज बस मोरें। समुझि परा अब प्रसाद तोरें॥ जानिउँ प्रिया तोरि चतुराई। एहि बिधि कहहु मोरि प्रभुताई॥3॥

भावार्थ:-

हे प्रिये! वह सब (यह चराचर विश्व तो) स्वभाव से ही मेरे वश में है। तेरी कृपा से मुझे यह अब समझ पड़ा। हे प्रिये! तेरी चतुराई मैं जान गया। तू इस प्रकार (इसी बहाने) मेरी प्रभुता का बखान कर रही है॥3॥

*** तव बतकही गूढ़ मृगलोचनि। समुझत सुखद सुनत भय मोचनि॥ मंदोदरि मन महुँ अस ठयऊ। पियहि काल बस मति भ्रम भयउ॥4॥

भावार्थ:-

हे मृगनयनी! तेरी बातें बड़ी गूढ़ (रहस्यभरी) हैं, समझने पर सुख देने वाली और सुननेसे भय छुड़ाने वाली हैं। मंदोदरी ने मन में ऐसा निश्चय कर लिया कि पति को कालवश मतिभ्रम हो गया है॥4॥

दोहा :

*** ऐहि बिधि करत बिनोद बहु प्रात प्रगट दसकंध। सहज असंक लंकपति सभाँ गयउ मद अंध॥16 क॥

भावार्थ:-

इस प्रकार (अज्ञानवश) बहुत से विनोद करते हुए रावण को सबेरा हो गया। तब स्वभाव सेही निडर और घमंड में अंधा लंकापति सभा में गया॥16 (क)॥

सोरठा :

*** फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद। मूरुख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम॥16 ख॥

भावार्थ:-

यद्यपि बादल अमृत सा जल बरसाते हैं तो भी बेत फूलता-फलता नहीं। इसी प्रकार चाहे ब्रह्मा के समान भी ज्ञानी गुरु मिलें, तो भी मूर्ख के हृदय में चेत (ज्ञान) नहीं होता॥16 (ख)॥